परम शिवभक्त शुक्राचार्य

पूर्वकाल की बात है, भृगुनन्दन ने वाराणसीपुरी में जाकर प्रभावशाली विश्वनाथ का ध्यान करते हुए बहुत कालतक घोर तप किया था। उस समय उन्होंने वहीं एक शिवलिङ्ग की स्थापना की और उसके सामने ही एक परम रमणीय कूप तैयार कराया। फिर प्रयत्नपूर्वक उन देवेश्वर को एक लाख बार द्रोणभर पञ्चामृत से तथा बहुत से सुगन्धित द्रव्यों से स्नान कराया। फिर एक हजार बार परम प्रीतिपूर्वक चन्दन, यक्ष-कर्दम[1] और सुगन्धित उबटन का उस लिङ्ग पर अनुलेप किया। तत्पश्चात् सावधानी के साथ परम प्रेमपूर्वक राजचम्पक (अमलतास), धतूर, कनेर, कमल, मालती, कर्णिकार, कदम्ब, मौलसिरी, उत्पल, मल्लिका (चमेली), शतपत्री, सिन्धुवार, ढाक, बन्धूकपुष्प (गुलदुपहरी), पुंनाग, नागकेसर, केसर, नवमल्लिक (बेलमोगरा), चिबिलिक (रक्तदला), कुन्द (माघपुष्प), मुचुकुन्द (मोतिया), मन्दार, बिल्वपत्र, गूमा, मरुवृक (मरुआ), वृक (धूप), गँठिवन, दौना, अत्यन्त सुन्दर आम के पल्लव, तुलसी, देवजवासा, बृहत्पत्री, कुशाङ्कु, नन्दावर्त (नाँदरूख), अगस्त्य, साल, देवदारु, कचनार, कुरबक (गुलखेरा), दुर्वाङ्कुर, कुरंटक (करसैला)-इनमें से प्रत्येक के पुष्पों और अन्य पल्लवों से तथा नाना प्रकार के रमणीय पत्रों और सुन्दर कमलों से शंकरजी की विधिवत् अर्चना की। उन्हें बहुत से उपहार समर्पित किये। तथा शिवलिङ्ग के आगे नाचते हुए शिवसहस्रनाम एवं अन्यान्य स्तोत्रों का गान करके शंकरजी का स्तवन किया। इस प्रकार शुक्राचार्य पाँच हजार वर्षोंतक नाना प्रकार के विधि-विधान से महेश्वर का पूजन करते रहे; परंतु जब उन्हें थोड़ा-सा भी वर देने के लिये उद्यत होते नहीं देखा, तब उन्होंने एक-दूसरे अत्यन्त दुस्सह एवं घोर नियम का आश्रय लिया। उस समय शुक्र ने इन्द्रियोंसहित मन के अत्यन्त चञ्चलतारूपी महान् दोषको बारंबार भावनारूपी जल से प्रक्षालित किया। इस प्रकार चित्तरत्न को निर्मल करके उसे पिनाकधारी शिव के अर्पण कर दिया और स्वयं धूमकण का पान करते हुए तप करने लगे। इस प्रकार उनके एक सहस्र वर्ष और बीत गये। तब भृगुनन्दन शुक्र को यों दृढ़चित्त से घोर तप करते देखकर महेश्वर उनपर प्रसन्न हो गये। फिर तो दक्षकन्या पार्वती के स्वामी साक्षात् विरूपाक्ष शंकर, जिनके शरीर की कान्ति सहस्रों सूर्यों से भी बढ़कर थी, उस लिङ्ग से निकलकर शुक्र से बोले।

महेश्वर ने कहा-महाभाग भृगुनन्दन! तुम तो तपस्या की निधि हो। महामुने! मैं तुम्हारे इस अविच्छिन्न तप से विशेष प्रसन्न हूँ। भार्गव! तुम अपना सारा मनोवाञ्छित वर माँग लो। मैं प्रीतिपूर्वक तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्ण कर दूँगा। अब मेरे पास तुम्हारे लिये कोई वस्तु अदेय नहीं रह गयी है।

शम्भु के इस परम सुखदायक एवं उत्कृष्ट वचन को सुनकर शुक्र प्रसन्न हो आनन्द-समुद्र

---

1. एक प्रकार का अङ्ग-लेप, जो कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कङ्कोल को मिलाकर बनाया जाता है।

में निमग्न हो गये। उन कमलनयन द्विजवर शुक्र का शरीर परमानन्दजनित रोमाञ्च के कारण पुलकायमान हो गया। तब उन्होंने हर्षपूर्वक शम्भु के चरणों में प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्र हर्ष से खिल उठे थे। फिर वे मस्तक पर अञ्जलि रखकर जय-जयकार करते हुए अष्टमूर्तिधारी[1] वरदायक शिव की अष्टमूर्त्यष्टक-स्तोत्र द्वारा स्तवन करके भूमि पर मस्तक रखकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया। जब अमित तेजस्वी भार्गव ने महोदव की इस प्रकार स्तुति की, तब शिवजी ने चरणों में पड़े हुए उन द्विजवर को अपनी दोनों भुजाओं से पकड़कर उठा लिया और परम प्रेमपूर्वक मेघगर्जन की सी गम्भीर एवं मधुर वाणी में कहा-

महादेवजी बोले-विप्रवर कवे! तुम मेरे पावन भक्त हो। तात! तुम्हारे इस उग्र तप से, उत्तम आचरण से, लिङ्गस्थापनजन्य पुण्य से, लिङ्ग की आराधना करने से, चित्त का उपहार प्रदान करने से, पवित्र अटल भाव से, अविमुक्त महाक्षेत्र काशी में पावन आचरण करने से मैं तुम्हें पुत्ररूप से देखता हूँ; अत: तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है। तुम अपने इसी शरीर से मेरी उदरदरी में प्रवेश करोगे और मेरे श्रेष्ठ इन्द्रियमार्ग से निकलकर पुत्ररूप में जन्म ग्रहण करोगे। महाशुचे! मेरे पास जो मृतसञ्जीवनी नाम की निर्मल विद्या है, जिसका मैंने ही अपने महान् तपोबल से निर्माण किया है, उस महामन्त्ररूपा विद्या को आज मैं तुम्हें प्रदान करूँगा; क्योंकि तुम पवित्र तप की निधि हो, अत: तुममें उस विद्या को धारण करने की योग्यता वर्तमान है। तुम नियमपूर्वक जिस-जिस के उद्देश्य से विद्येश्वर की इस श्रेष्ठ विद्या का प्रयोग करोगे, वह निश्चय ही जीवित हो जायगा-यह सर्वथा सत्य है। तुम आकाश में अत्यन्त दीप्तिमान् तारारूप से स्थित होओगे। तुम्हारा तेज सूर्य और अग्नि के तेज का भी अतिक्रमण कर जायगा। तुम ग्रहों में प्रधान माने जाओगे। जो स्त्री अथवा पुरुष तुम्हारे सम्मुख रहने पर यात्रा करेंगे, उनका सारा कार्य तुम्हारी दृष्टि पड़ने से नष्ट हो जायगा। सुव्रत! तुम्हारे उदय होने पर जगत् में मनुष्यों के विवाह आदि समस्त धर्मकार्य सफल होंगे। सभी नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी) तिथियाँ तुम्हारे संयोग से शुभ हो जायँगी और तुम्हारे भक्त वीर्यसम्पन्न तथा बहुत सी संतानवाले होंगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित किया हुआ यह शिवलिङ्ग 'शुक्रेश' के नाम से विख्यात होगा। जो मनुष्य इस लिङ्ग की अर्चना करेंगे, उन्हें सिद्धि प्राप्त हो जायगी। जो लोग वर्षपर्यन्त नक्तव्रतपरायण होकर शुक्रवार के दिन शुक्रकूप के जल से सारी क्रियाएँ सम्पन्न करके शुक्रेशकी अर्चना करेंगे, उन्हें जिस फल की प्राप्ति होगी, वह मुझसे श्रवण करो। उन मनुष्यों में वीर्य की अधिकता होगी, उनका वीर्य कभी निष्फल नहीं होगा; वे पुत्रवान् तथा पुरुषत्व के सौभाग्य से सम्पन्न होंगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। वे सभी मनुष्य बहुत-सी विद्याओं के ज्ञाता और सुख के भागी

1. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्रमा और सूर्य-इन आठों में अधिष्ठित शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान-ये अष्टमूर्तियों के नाम हैं।

होंगे। यों वरदान देकर महादेव उसी लिङ्ग में समा गये। तब भृगुनन्दन शुक्र भी प्रसन्नमन से अपने धाम को चले गये।

कालान्तर में अन्धकासुर ने पार्वती को पाने के लिये जब भगवान् शंकर से युद्ध छेड़ दिया और युद्ध में शंकर के प्रमथों की विजय होने लगी, तब वह (अन्धक) घबराकर शुक्राचार्यजी की शरण में गया और गिड़गिड़ाकर मृतसञ्जीवनी विद्या के द्वारा मरे हुए असुरों को जीवित करने की प्रार्थना करने लगा। इस पर शुक्राचार्य युद्ध स्थल में गये और आदरपूर्वक विद्या के स्वामी शंकर का स्मरण करके एक-एक दैत्य पर मृतसञ्जीवनी विद्या का प्रयोग करने लगे। फलस्वरूप वे सभी दैत्य-दानववीर एक साथ ही हथियार लिये हुए इस प्रकार उठ खड़े हुए मानो अभी सोकर उठे हों। शुक्राचार्य के संजीवनी प्रयोग से जब बड़े-बड़े दानव जीवित होकर प्रमथों को बुरी तरह मारने लगे, तब प्रमथों ने जाकर शिवजी को यह समाचार सुनाया। तब शिवजी ने कहा-नन्दिन्! तुम अभी तुरंत जाओ और दैत्यों के बीच से शुक्राचार्य को उठा लाओ।

भगवान् शिव के यों कहने पर नन्दी साँड़ के समान बड़े जोर से गरजे और तुरंत ही सेना को लाँघकर शुक्राचार्य के समीप पहुँच गये। वहाँ समस्त दैत्य उनकी रक्षा कर रहे थे। उन सभी दैत्यों को विक्षुब्ध करके नन्दी ने शुक्राचार्य का अपहरण कर लिया। नन्दी ने अपने ऊपर बरसाये गये असुरों के अस्त्रों को अपने मुख की आग से भस्म करते हुए शुक्राचार्य को दबोचकर शिवजी के समीप आ पहुँचे। शंकरजी ने शुक्राचार्य को पकड़ लिया और बिना कुछ कहे उन्हें फल की तरह मुख में डाल लिया। उस समय समस्त असुरों में हाहाकार मच गया।

जब गिरिजेश्वर ने शुक्राचार्य को निगल लिया, तब दैत्यों की विजय की आशा जाती रही। शम्भु के उदर में स्थित शुक्राचार्य आश्रयरहित वायु की भाँति निकलने का मार्ग ढूढ़ते हुए चक्कर काटने लगे। उस समय उन्हें रुद्र के उदर में पातालसहित सातों लोक, ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आदित्य और अप्सराओं के विचित्र भुवन तथा वह प्रमथासुर संग्राम भी दीख पड़ा। इस प्रकार वे सौ वर्षोंतक शिवजी की कुक्षि में चारों ओर भ्रमण करते रहे; परन्तु उन्हें कोई छिद्र नहीं दीख पड़ा। तब शुक्राचार्य ने शैवयोग का आश्रय ले एक मन्त्र[1] का जप किया। उस मन्त्र के प्रभाव से वे शम्भु के जठरपञ्जर से तीन हजार वर्ष बाद शुक्ररूप में लिंगमार्ग से बाहर निकले। तब उन्होंने शिवजी को प्रणाम किया। गौरी ने उन्हें पुत्ररूप में स्वीकार कर लिया और विघ्नरहित बना दिया। तदनन्तर शुक्राचार्य को वीर्य के रास्ते निकला हुआ देखकर भगवान् शिव मुसकराते हुए बोले-भृगुनन्दन! तुम मेरे लिंगमार्ग से शुक्र की तरह निकले हो, इसलिये अब तुम शुक्र कहलाओगे। जाओ, अब तुम मेरे पुत्र हो गये।

शंकरजी के यों कहने पर सूर्य के सदृश कान्तिमान् शुक्र पुनः शिवजी को प्रणाम कर स्तुति

1. यह मन्त्र इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

करने लगे। स्तुति के बाद पुनः नमस्कार कर शिवजी की आज्ञा से वे पुनः पराजित दानवों की सेना में प्रविष्ट हुए। उस समय उन्होंने शिव के त्रिशूल पर लटके हुए दानवराज अन्धक को देखा। उसका शरीर सूख गया था और वह त्रिशूल पर लटका हुआ परमेश्वर शिव का ध्यान कर रहा था। फलस्वरूप शंकरजी ने उसे मुक्त करके गणाध्यक्ष का पद प्रदान कर दिया।

(उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त शिवपुराण की रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, के अध्याय 47-50 से ली गयी है।)

ब्रह्मपुराण में शुक्राचार्य से संबंधित कथा का स्वरूप कुछ इस प्रकार है।

अङ्गिरा और भृगु-ये दो परम धर्मात्मा ऋषि हुए हैं। इन दोनों के दो-दो पुत्र हुए, जो बड़े ही विद्वान् और रूप तथा बुद्धि से सुशोभित थे। अङ्गिरा के एक पुत्र का नाम था-जीव और भृगु के एक पुत्र का नाम था-कवि(या शुक्र)। ये दोनों अपने माता-पिता के अधीन रहते थे। जब दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार हो गया, तब उनके पिता परस्पर कहने लगे-'हम दोनों में से एक ही इन दोनों पुत्रों का शिक्षक हो। इससे एक ही शासन करेगा और दूसरा सुख से बैठा रहेगा।' यह सुनकर अङ्गिरा ने कहा-'मैं कवि को भी अपने पुत्र के समान ही पढ़ाऊँगा। वह सुखपूर्वक मेरे यहाँ रहे।'

अङ्गिरा की बात सुनकर भृगु ने कहा-'ठीक है' और उन्होंने अपने पुत्र शुक्र को अङ्गिरा की सेवा में सौंप दिया। परन्तु अङ्गिरा उन दोनों बालकों में विषम बुद्धि रखते थे। इसलिये दोनों को पृथक्-पृथक् पढ़ाते थे। बहुत दिनोंतक किसी प्रकार चलता रहा, तब एक दिन शुक्र ने कहा-'गुरुदेव! आप मुझे प्रतिदिन विषमभाव से पढ़ाते हैं। गुरुओं के लिये यह उचित नहीं कि वे पुत्र और शिष्य में भेदभाव समझें। जो लोग विषम बुद्धि रखते हैं, उनके पाप की कोई गणना नहीं है। आचार्य! अब मैंने आपको अच्छी तरह समझ लिया। आपको बारंबार नमस्कार करता हूँ। अब दूसरे किसी गुरु के यहाँ जाऊँगा। मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।'

इस प्रकार गुरु और बृहस्पति से पूछकर उनकी आज्ञा से शुक्र चले गये। उन्होंने सोचा अब पूर्ण विद्या प्राप्त करके ही पिता के पास चलूँ। किन्तु किससे पूछूँ, कौन सबसे श्रेष्ठ गुरु हो सकता है? इन्हीं सब बातों का विचार करते हुए शुक्र ने महाप्राज्ञ गौतम के पास जाकर पूछा-'मुनिश्रेष्ठ! बताइये, कौन मेरा गुरु हो सकता है? जो तीनों लोकों का गुरु हो, उसी के पास मैं जाऊँगा।'

गौतम ने कहा-जगदुरु भगवान् शंकर ही गुरु होने योग्य हैं।

शुक्र ने पूछा-मैं कहाँ रहकर शङ्करजी की आराधना करूँ?

गौतम बोले-गौतमी गङ्गा(गोदावरी) में स्नान करके पवित्र हो स्तोत्रों द्वारा भगवान् शंकर को संतुष्ट करो। संतुष्ट होने पर वे जगदीश्वर तुम्हें विद्या प्रदान करेंगे।

गौतम के कहने से शुक्र गोदावरी के तट पर गये और वहाँ स्नान करके पवित्र हो भगवान्

शिव की स्तुति करने लगे।

शुक्र बोले–प्रभो! मैं बालक हूँ। मेरी बुद्धि बालक की ही है और आप बालचन्द्रमा को मस्तक पर धारण करनेवाले हैं। मुझे आपकी स्तुति करने का कुछ भी ज्ञान नहीं है। केवल आपको नमस्कार करता हूँ। गुरु ने मुझे त्याग दिया है। मेरा कोई सुहृद् अथवा सखा नहीं है। आप ही सब प्रकार से मेरे प्रभु हैं। जगन्नाथ! आपको नमस्कार है। आप गुरुवालों के भी गुरु और बड़ों के भी बड़े हैं। मैं छोटा बच्चा हूँ। मुझपर कृपा कीजिये। जगन्मय! आपको नमस्कार है। सुरेश्वर! मैं विद्या के लिये आपकी शरण में आया हूँ। मुझे आपके स्वरूप का कुछ भी ज्ञान नहीं है। आप स्वयं ही कृपा करके मेरी ओर देखें। लोकसाक्षी शिव! आपको नमस्कार है।

शुक्र के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर बोले–'वत्स! तुम्हारा कल्याण हो। तुम इच्छानुसार वर माँगो, भले ही वह देवताओं के लिये भी दुर्लभ क्यों न हो।' उदारबुद्धि कवि ने भी हाथ जोड़कर कहा–'नाथ! ब्रह्मा आदि देवताओं तथा ऋषियों को भी जो विद्या नहीं प्राप्त हुई हो, उसके लिये मैं याचना करता हूँ। आप ही मेरे गुरु और देवता हैं।'

शुक्र ने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब देवश्रेष्ठ भगवान् शिव ने उन्हें मृतसंजीवनी विद्या प्रदान की, जिसका ज्ञान देवताओं को भी नहीं था। साथ ही उन्होंने लौकिकी, वैदिकी तथा अन्यान्य विद्याएँ भी दीं। जब साक्षात् भगवान् शंकर ही प्रसन्न हो गये थे, तब क्या बाकी रह जाता। वह महाविद्या पाकर शुक्र अपने पिता और गुरु के पास गये। अपनी विद्या से पूजित होकर वे दैत्यों के गुरु हुए। किसी समय कुछ कारणवश बृहस्पति के पुत्र कच ने शुक्राचार्य से मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की। कच से बृहस्पति ने और बृहस्पति से पृथक्–पृथक् देवताओं ने उस विद्या को ग्रहण किया। गौतमी के उत्तर तट पर, जहाँ भगवान् महेश्वर की आराधना करके शुक्र ने विद्या पायी थी, वह स्थान शुक्रतीर्थ कहलाता है। मृत्यु–संजीवनी तीर्थ भी उसका नाम है। वह आयु और आरोग्य की वृद्धि करनेवाला है। वहाँ स्नान, दान आदि जो कुछ भी शुभ कर्म किया जाता है, वह अक्षय पुण्य देनेवाला होता है।

(यह कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त मार्कण्डेय–ब्रह्मपुराणांक के ब्रह्मपुराण पृ. 404–405 से ली गयी है।)

स्कंदपुराण में शुक्राचार्य से संबंधित दो तरह की कथाएँ पायी जाती हैं। पहली कथा काशीखण्ड में तथा दूसरी प्रभासखण्ड में। काशीखण्डवाली कथा शिवपुराण की तरह से ही है परन्तु प्रभासखण्ड की कथा में थोड़ा सा अन्तर है। यह कथा इस प्रकार है।

एक बार दैत्यों के आचार्य शुक्र को अपने शिष्यों(दानवों) का पराभव देखकर बहुत दुःख हुआ

और उन्होंने तपस्या के बल से देवों को हराने की प्रतिज्ञा की तथा वे अर्बुद पर्वत पर तपस्या करने चले गये। वहाँ उन्होंने भूमि के भीतर एक सुरंग में प्रवेश कर 'शुक्रेश्वर' नामक शिवलिङ्ग की स्थापना की और प्रतिदिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक षोडशोपचार से भगवान् शंकर की अर्चना करने लगे। अनाहार और अनन्यमनस्क होकर वे परम दारुण तप करने लगे। इस प्रकार तप करते-करते जब उनके एक सहस्र वर्ष बीत गये, तब श्रीमहादेवजी ने उन्हें दर्शन देकर कहा-'हे द्विजोत्तम! मैं तुम्हारी आराधना से परम संतुष्ट हूँ, जो वर माँगना चाहो, माँगो।'

शुक्राचार्य ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की-

यदि तुष्टो महादेव विद्यां देहि महेश्वर।
यया जीवन्ति संप्राप्ता मृत्युं संख्येऽपि जन्तवः।।

(स्कन्दपु., प्रभासखण्ड, अर्बुदखण्ड 15/8)

'हे महेश्वर महादेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह विद्या दीजिये जिससे युद्ध में भी मरे हुए प्राणी जीवित हो जायँ।' भगवान् शंकर ने प्रसन्नतापूर्वक मृत्यु पर विजय प्राप्त करानेवाली तथा मृत प्राणी को भी जीवित कर लेने की शक्तिवाली संजीवनी-विद्या वर के रूप में उन्हें प्रदान की और कहा कि तुम्हें और कुछ माँगना हो तो वह भी माँग लो। तब उन्होंने कहा कि 'महाराज! कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को जो इन शुक्रेश्वर का भक्तिपूर्वक अर्चन करे, उसे अल्पमृत्यु का कभी भय न हो।' महादेवजी ने 'तथास्तु' कहकर कैलास की ओर प्रस्थान किया। वरके प्रभाव से शुक्राचार्य युद्ध में मरे हुए असंख्य दैत्यों को फिर से जिन्दा कर लेते थे, जिससे दैत्यों को पराजित करना देवों के लिये कठिन हो गया।

इस शुक्रतीर्थ में पितरों की श्राद्धादि क्रिया करने से पितृगण संतुष्ट होते हैं। यहाँ स्नान करने से एवं शुक्रेश्वर के अर्चन से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है और उसे अल्पमृत्यु का भय कभी नहीं होता। उसे इस लोक में अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है, सभी सुख मिलते हैं और वह अन्त में शिवलोक को प्राप्तकर शिवगणों के साथ आनन्द भोगता है।

(उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के शिवोपासनांक पर आधारित है।)